ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

मनको वश करनेके उपाय

जिसने मनको जीता उसने
जगत्‌को जीत लिया

श्रीहरिः।

मनको वशमें करनेके उपाय।

१ इस लोक और परलोकके सारे भोगोंमें दुःख और दोष देखते हुए उनसे वितृष्ण होना।

२ नियमानुवर्त्तिताका पालन करना, सारे कार्य्य नियमितरूपसे करना।

३ मनके प्रत्येक कार्यपर विचार करते हुए उसे बुरे चिन्तनसे बचाना।

४ मनके कहनेमें नहीं चलना।

५ मनको सर्वदा सत्कार्यमें लगाये रखना।

६ जहां जहां मन जाय वहां वहांसे हटाकर परमात्मामें लगाना अथवा सर्वत्र परमात्माकी भावना करते हुए मनको जहां कहीं भी जाने देना।

७ एक तत्त्वका अभ्यास करना।

८ भगवान्‌के नाम या मूर्त्तिका ध्यान और मानसिक पूजा करना।

९ मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा-व्रत पालना।

१० परमार्थ-ग्रन्थोंका अध्ययन करना।

११ प्राणायाम करना।

१२ श्वासके द्वारा नामका जप करना।

१३ अनन्य मनसे भगवान्‌के शरण होना।

१४ मनसे अलग होकर उसके कार्योंको देखना।

१५ नेमपूर्वक भगवन्नाम-कीर्तन करना।

* श्रीविष्णु *

श्रीहरिः

मनको वश करनेके उपाय

श्रीभगवान् कहते हैं—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

(गीता ६ । ३६)

'जिनका मन वशमें नहीं है उनके लिये योगका प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है यह मेरा मत है परन्तु मनको वशमें करनेवाले प्रयत्नशील पुरुष साधनद्वारा योग प्राप्त कर सकते हैं।'

भगवान् श्रीकृष्ण महाराजके इन वचनोंके अनुसार यह सिद्ध होता है कि मनको वश किये बिना परमात्माकी प्राप्तिरूप* योग दुष्प्राप्य है, यदि कोई ऐसा चाहे कि मन तो अपनी इच्छानुसार निरंकुश होकर विषयवाटिकामें स्वच्छन्द विचरण किया करे और परमात्माके दर्शन मुझे आपसे आप हो जायं तो यह उसकी भूल है।

दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति और परमात्माकी प्राप्ति चाहनेवालेको मन वशमें करना ही पड़ेगा, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं। परन्तु मन स्वभावसे ही बड़ा चञ्चल और

---

* 'परमात्माके दर्शन' 'परमात्माकी प्राप्ति' 'आत्म-साक्षात्कार' 'स्वस्वरूपज्ञान' 'आत्मदर्शन' 'बोध' ये सब एकार्थवाची ही हैं।

वलवान् है, इसे वशमें करना कोई साधारण वात नहीं, सारे साधन इसीको वश करनेके लिये किये जाते हैं, इसपर विजय मिलते ही मानो विश्वपर विजय मिल गयी। भगवान् शंकराचार्यने कहा है कि 'जितं जगत् केन मनो हि येन' 'जगत्को किसने जीता?—जिसने मनको जीत लिया' अर्जुनने भी मनको वशमें करना कठिन समझकर कातर शब्दोंमें भगवान्से यही कहा था—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि वलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

(गीता ६।३४)

'हे भगवन्! यह मन वड़ा ही चञ्चल, हठीला, दृढ़ और वलवान् है, इसे रोकना मैं तो वायुके (रोकनेके) समान अत्यन्त दुष्कर समझता हूं।'

इससे किसीको यह न समझ लेना चाहिये कि जो वात अर्जुनके लिये इतनी कठिन थी वह हम लोगोंके लिये कैसे सम्भव होगी? मनको जीतना कठिन अवश्य है, भगवान्ने इस वातको माना, पर साथ ही उपाय भी वतला दिया—

असंशयं महावाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(गीता ६।३५)

भगवान्ने कहा 'अर्जुन! इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस चञ्चल मनका निग्रह करना वड़ा ही कठिन है परन्तु अभ्यास

और वैराग्यसे यह (मन) वशमें हो सकता है।' इससे यह सिद्ध हो गया कि मनका वशमें करना कठिन भले ही हो, पर असम्भव नहीं, और इसके वश किये बिना दुःखोंकी निवृत्ति नहीं। अतएव इसे वश करना ही चाहिये. इसके लिये सबसे पहले इसका साधारण स्वरूप और स्वभाव जाननेकी आवश्यकता है।

मनका स्वरूप

मन क्या पदार्थ है? यह आत्म और अनात्म पदार्थके बीचमें रहनेवाली एक विलक्षण वस्तु है, यह स्वयं अनात्म और जड़ है किन्तु बन्ध और मोक्ष इसीके अधीन हैं।

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'

बस, मन ही जगत् है, मन नहीं तो जगत् नहीं! मन विकारी है, इसका कार्य संकल्प-विकल्प करना है, यह जिस पदार्थको ग्रहण करता है स्वयं भी तदाकार बन जाता है। यह रागके साथ ही चलता है, सारे अनर्थोंकी उत्पत्ति रागसे होती है, राग न हो तो मन प्रपञ्चोंकी ओर न जाय। किसी भी विषयमें गुण और सौन्दर्य देखकर उसमें राग होता है, इसीसे मन उस विषयमें प्रवृत्त होता है परन्तु जिस विषयमें इसे दुःख और दोष दीख पड़ते हैं उससे इसका द्वेष हो जाता है, फिर यह उसमें प्रवृत्त नहीं होता, यदि कभी भूल कर प्रवृत्त हो भी जाता है तो उसमें अवगुण देखकर द्वेषसे तत्काल लौट आता है,

वास्तवमें द्वेषवाले विषयमें भी इसकी प्रवृत्ति रागसे ही होती है। साधारणतया यही मनका स्वरूप और स्वभाव है। अब सोचना यह है कि यह वशमें क्योंकर हो? इसके लिये उपाय भगवान्‌ने बतला ही दिया है-अभ्यास और वैराग्य। यही उपाय योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलिने बतलाया है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

(समाधिपाद १२)

अभ्यास और वैराग्यसे ही चित्तका निरोध होता है अतएव अब इसी अभ्यास और वैराग्यपर विचार करना चाहिये। इनमें पहले वैराग्यके सम्बन्धमें कुछ लिखा जाता है।

वशमें करनेके साधन।

भोगोंमें वैराग्य

जब तक संसारकी वस्तुएँ सुन्दर और सुखप्रद मालूम होती हैं तभी तक मन उनमें जाता है, यदि यही सब पदार्थ दोषयुक्त और दुःखप्रद दीखने लगें (जैसा कि वास्तवमें ये हैं) तो मन कदापि इनमें नहीं लगेगा। यदि कभी इनकी ओर गया भी तो उसी समय वापस लौट आवेगा, इसलिये संसारके सारे पदार्थोंमें (चाहे वे इहलौकिक हों या पारलौकिक) दुःख और दोषकी प्रत्यक्ष भावना करनी चाहिये। ऐसा दृढ़ प्रत्यय करना चाहिये कि इन पदार्थोंमें केवल दोष और दुःख ही भरे हुए हैं। रमणीय दीखनेवाली वस्तुमें ही मन

लगता है। यदि यह रमणीयता विषयोंसे हटकर परमात्मामें दिखायी देने लगे (जैसा कि वास्तवमें है) तो यही मन तुरन्त विषयोंसे हटकर परमात्मामें लग जाय। यही वैराग्यका साधन है और वैराग्य ही मन जीतनेका एक उत्तम उपाय है। सच्चा वैराग्य तो संसारके अस्तित्वका सर्वथा अभाव और उसकी जगह परमात्माका नित्य भाव प्रतीत होनेमें है। परन्तु आरम्भमें साधकको मन वश करनेके लिये इस लोक और परलोकके समस्त पदार्थोंमें दोष और दुःख देखना चाहिये, जिससे मनका अनुराग उनसे हटे।

श्रीभगवान्‌ने कहा है—

> इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
> जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥
>
> (गीता १३। ८)

इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंमें वैराग्य, अहंकारका त्याग एवं (इस शरीरमें) जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोग (आदि) दुःख और दोष देखने चाहिये। इस प्रकार वैराग्य-की भावनासे मन वशमें हो सकता है। अब कुछ अभ्यास बतलाये जाते हैं।

नियमसे रहना

मनको वश करनेमें नियमानुवर्तितासे बड़ी सहायता मिलती है। सारे काम ठीक समयपर नियमानुसार होने चाहिये। प्रातःकाल बिछौनेसे उठकर रातको सोने तक दिन भरके कार्योंकी एक ऐसी नियमित दिनचर्या बना लेनी चाहिये कि

जिससे जिस समय जो कार्य करना हो, मन आपसे आप स्वभावसे ही उसी कार्यमें लग जाय। संसार-साधनमें तो नियमानुवर्तितासे लाभ होता ही है, परमार्थमें भी इससे बड़ा लाभ होता है। नियमित ध्यानके लिये प्रतिदिन जिस स्थानपर, जिस आसनसे, जितने समय बैठा जाय उसमें किसी दिन भी व्यतिक्रम नहीं होना चाहिये। पांच मिनिटका भी नियमित ध्यान अनियमित अधिक समयके ध्यानसे उत्तम है। आज दश मिनिट बैठे, कल आध घण्टे, परसों बिलकुल लाँघा, इस प्रकारके साधनसे साधकको सिद्धि कठिनतासे मिलती है। जब पांच मिनिटका ध्यान नियमसे होने लगे तब दश मिनिटका करे, परन्तु दश मिनिटका करनेके बाद किसी दिन भी नौ मिनिट न होना चाहिये। इस प्रकार नियमानुवर्तितासे भी मन स्थिर होता है। नियमोंका पालन खाने, पीने, पहनने, सोने और व्यवहार करने सभीमें होना चाहिये। नियम अपने अवस्थानुकूल शास्त्रसम्मत बना लेने चाहिये।

मनकी क्रियाओंपर विचार

मनके प्रत्येक कार्यपर विचार करना चाहिये। प्रतिदिन रातको सोनेसे पूर्व दिनभरके मनके कार्योंपर विचार करना उचित है, यद्यपि मनकी सारी उधेड़बुनका स्मरण होना बड़ा कठिन है परन्तु जितनी याद रहे उतनी ही बातोंपर विचारकर जो जो संकल्प सात्त्विक मालूम दें, उनके लिये मनकी सराहना करना और जो जो संकल्प राजसिक और

तामसिक मालूम पड़ें उनके लिये मनको धिक्कारना चाहिये। प्रतिदिन इस प्रकारके अभ्याससे मनपर सत्कार्य करनेके और असत्कार्य छोड़नेके संस्कार जमने लगेंगे, जिससे कुछ ही समयमें मन बुराइयोंसे बचकर भले भले कार्योंमें लग जायगा। मन पहले भले कार्यवाला होगा तब उसे वश करनेमें सुगमता होगी। कुसङ्गमें पड़ा हुआ बालक जबतक कुसङ्ग नहीं छोड़ता, तबतक उसे कुसङ्गियोंसे बुरी सलाह मिलती रहती है, इससे उसका वशमें होना कठिन रहता है पर जब कुसंग छूट जाता है तब उसे बुरी सलाह नहीं मिल सकती, दिनरात घरमें उसको माता पिताके सदुपदेश मिलते हैं, वह भली-भली बातें सुनता है। तब फिर उसके सुधरकर माता-पिताके आज्ञाकारी होनेमें विलम्ब नहीं होता। इसी तरह यदि विषय-चिन्तन करनेवाले मनको कोई एक साथ ही निर्विषय करना चाहे तो वह नहीं कर सकता। पहले मनको बुरे चिन्तनसे बचाना चाहिये, जब वह परमात्मा-सम्बन्धी शुभ चिन्ता करने लगेगा तब उसको वश करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

मनके कहनेमें न चलना

मनके कहनेमें नहीं चलना चाहिये। जबतक यह मन वशमें नहीं हो जाता तबतक इसे परम शत्रु मानना चाहिये। जैसे शत्रुके प्रत्येक कार्यपर निगरानी रखनी पड़ती है वैसे ही इसके भी प्रत्येक कार्यको सावधानीसे देखना चाहिये। जहां

कहीं यह उल्टा-सीधा करने लगे वहीं इसे पछाड़ना चाहिये। मनकी खातिर भूलकर भी न करनी चाहिये। यद्यपि यह बड़ा बलवान् है, कई बार इससे हारना होगा पर साहस न छोड़ना चाहिये। जो हिम्मत नहीं हारता वह एक दिन मनको अवश्य जीत लेता है। इससे लड़नेमें एक विचित्रता है, यदि दृढ़तासे लड़ा जाय तो लड़नेवालेका बल दिनों दिन बढ़ता है और इसका क्रमशः घटने लगता है, इसलिये इससे लड़नेवाला एक-न-एक दिन इसपर अवश्य ही विजयी होता है। अतएव इसकी हाँ में हाँ न मिलाकर प्रत्येक कार्यमें खूब सावधानीसे बरतना चाहिये। यह मन बड़ा ही चतुर है। कभी डरावेगा, कभी फुसलावेगा, कभी लालच देगा, बड़े बड़े अनोखे रंग दिखलावेगा; परन्तु कभी इसके धोखेमें न आना चाहिये। भूलकर भी इसका विश्वास न करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे इसकी हिम्मत टूट जायगी, लड़ने और धोखा देनेकी आदत छूट जायगी। अन्तमें यह आज्ञा देनेवाला न रहकर सीधा-सादा आज्ञा पालन करनेवाला बन जायगा।

मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चोर।
मनके मत चलिये नहीं, पलक पलक मन और॥

मनको सत्कार्यमें संलग्न रखना

मन कभी निकम्मा नहीं रह सकता, कुछ न कुछ काम होना ही चाहिये। अतएव इससे निरन्तर काम लेना चाहिये। निकम्मा रहनेसे ही इसे बुरी बातें सूझा

करती हैं, अतएव जहाँतक नींद न आवे वहाँ तक चुने हुए सुन्दर मांगलिक कार्योंमें इसे लगाये रखना चाहिये।

मनको परमात्मामें लगाना

मनको वशमें करनेका उपाय प्रारम्भ करनेपर पहले पहले तो यह इतना ज़ोर दिखलाता है,-अपनी चंचलता और शक्तिमत्तासे ऐसी पछाड़ लगाता है, कि नया साधक घबड़ा उठता है, उसके हृदयमें निराशा-सी छा जाती है परन्तु ऐसी अवस्थामें धैर्य्य रखना चाहिये। मनका तो ऐसा स्वभाव ही है और हमें इसपर विजय पाना है तब घबड़ानेसे थोड़े ही काम चलेगा ? मुस्तैदीसे सामना करना चाहिये। आज न हुआ तो क्या, कभी न कभी तो वशमें होगा ही। इसीलिये भगवान्‌ने कहा है:-

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥
(गीता ६।२५)

'धीरे धीरे अभ्यास करता हुआ उपरामताको प्राप्त हो, धैर्ययुक्त बुद्धिसे मनको परमात्मामें स्थिर करके और किसी भी विचारको मनमें न आने दे।'

बड़ा धैर्य चाहिये। घबराने, उकताने या निराश होनेसे काम नहीं होगा। झाड़ूसे घर साफ कर लेनेपर भी जैसे धूल जमी हुई-सी दीख पड़ती है, उसी प्रकार मनको

संस्कारोंसे रहित करते समय यदि मन और भी अस्थिर या अपरिच्छिन्न दीखे तो क्या आश्चर्य है? पर इससे डरकर झाड़ू लगाना बन्द न करना चाहिये। इस प्रकारकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि किसी प्रकारकी भी वृथा चिन्ता या मिथ्या संकल्पोंको मनमें नहीं आने दिया जायगा। बड़ी चेष्टा, बड़ी दृढ़ता रखनेपर भी मन साधककी चेष्टाओंको कई बार व्यर्थ कर देता है, साधक तो समझता है कि मैं ध्यान कर रहा हूं पर मनदेवता संकल्प-विकल्पोंकी पूजामें लग जाते हैं। जब साधक मनकी ओर देखता है तो उसे आश्चर्य होता है कि यह क्या हुआ? इतने नये नये संकल्प, जिनकी भावना भी नहीं की गयी थी कहाँसे आ गये? बात यह होती है कि साधक जब मनको निर्विषय करना चाहता है तब संसारके नित्य अभ्यस्त विषयोंसे मनको फुरसत मिल जाती है, उधर परमात्मामें लगनेका इससमय तक उसे पूरा अभ्यास नहीं होता। इसलिये फुरसत पाते ही वह उन पुराने दृश्योंको (जो संस्काररूपसे उस पर अङ्कित हो रहे हैं) बायस्कोपके फिल्मकी भांति क्षण क्षणमें एकके बाद एक उलटने लग जाता है। इसीसे उस समय ऐसे संकल्प मनमें उठते हुए मालूम होते हैं, जो संसारका काम करते समय याद भी नहीं आते थे। मनकी ऐसी प्रबलता देखकर साधक स्तम्भित-सा रह जाता है, पर कोई चिन्ता नहीं। जब अभ्यासका बल बढ़ेगा तब उसको संसारसे फुरसत मिलते ही तुरन्त परमात्मामें लग जायगा। अभ्यास दृढ़

होनेपर तो यह परमात्माके ध्यानसे हटाये जानेपर भी न हटेगा । मन चाहता है सुख । जबतक इसे वहाँ सुख नहीं मिलता, विषयोंमें सुख दीखता है तबतक यह विषयोंमें रमता है । जब अभ्याससे विषयोंमें दुःख और परमात्मामें परम सुख प्रतीत होने लगेगा तब यह स्वयं ही विषयोंको छोड़कर परमात्माकी ओर दौड़ेगा, परन्तु जब तक ऐसा न हो तबतक निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये । यह मालूम होते ही कि मन अन्यत्र भागा है, तत्काल इसे पकड़ना चाहिये । इसको पक्के चोरकी भाँति भागनेका बड़ा अभ्यास है इसलिये ज्यों ही यह भागे त्यों ही इसे पकड़ना चाहिये ।

श्रीभगवान्‌ने कहा है:—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

(गीता ६ । २६)

यह चञ्चल और अस्थिर मन जहाँ जहाँ दौड़कर जाय वहाँ वहाँसे हटाकर बारम्बार इसे परमात्मामें ही लगाना चाहिये ।

जिस जिस कारणसे मन सांसारिक पदार्थोंमें विचरे उस उससे रोककर परमात्मामें स्थिर करे । मनपर ऐसा पहरा बैठा दे कि यह भाग ही न सके । यदि किसी प्रकार भी न माने तो फिर इसे भागनेकी पूरी स्वतन्त्रता दे दी जाय, परन्तु यह जहाँ जाय वहींपर परमात्माकी भावना की जाय, वहींपर इसे परमात्माके स्वरूपमें लगाया जाय । इस उपायसे भी मन स्थिर हो सकता है ।

एक तत्त्वका अभ्यास करना

योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं:—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ।

(समाधिपाद ३२)

चित्तका विक्षेप दूर करनेके लिये पाँच तत्त्वोंमेंसे किसी एक तत्त्वका अभ्यास करना चाहिये । एक तत्त्वके अभ्यासका अर्थ ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक वस्तुकी या किसी मूर्त्तिविशेषकी तरफ एकदृष्टिसे देखते रहना, जबतक आँखोंकी पलक न पड़े या आँखोंमें जल न आ जाय तबतक उस एक ही चिह्नकी तरफ देखते रहना चाहिये, चिह्न धीरे धीरे छोटा करते रहना चाहिये । अन्तमें उस चिह्नको बिलकुल ही हटा देना चाहिये । 'दृष्टिः स्थिरा यत्र विनावलोकनम्' अवलोकन न करनेपर भी दृष्टि स्थिर रहे । ऐसा हो जानेपर चित्तविक्षेप नहीं रहता । इस प्रकार प्रतिदिन आध आध घण्टे भी अभ्यास किया जाय तो मनके स्थिर होनेमें अच्छी सफलता मिल सकती है । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जो जितना अधिक समय दे सकेगा उसे उतना ही अधिक लाभ होगा ।

ध्यान या मानसपूजा

सब जगह भगवान्‌के किसी नामको लिखा हुआ समझकर बारम्बार उस नामके ध्यानमें मन लगाना चाहिये

अथवा भगवान्‌के किसी स्वरूपविशेषकी अन्तरिक्षमें मनसे कल्पना कर उसकी पूजा करनी चाहिये। पहले भगवान्‌की मूर्तिके एक एक अवयवका अलग अलग ध्यान कर फिर दृढ़ताके साथ सारी मूर्तिका ध्यान करना चाहिये। उसीमें मनको अच्छी तरह स्थिर कर देना चाहिये। मूर्तिके ध्यानमें इतना तन्मय हो जाना चाहिये कि संसारका भान ही न रहे। फिर कल्पना-प्रसूत सामग्रियोंसे भगवान्‌की मानसिक पूजा करनी चाहिये। प्रेमपूर्वक की हुई नियमित भगवदुपासनासे मनको निश्चल करनेमें बड़ी सहायता मिल सकती है।

मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षाका व्यवहार

योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलिजी एक उपाय यह भी बतलाते हैं:—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।

(समाधिपाद ३३)

सुखी मनुष्योंसे प्रेम, दुःखियोंके प्रति दया, पुण्यात्माओंके प्रति प्रसन्नता और पापियोंके प्रति उदासीनताकी भावनासे चित्त प्रसन्न होता है।

(क) जगत्‌के सारे सुखी जीवोंके साथ प्रेम करनेसे चित्तका ईर्षामल दूर होता है, डाहकी आग बुझ जाती है। संसारमें लोग अपनेको और अपने आत्मीय-स्वजनोंको सुखी

देखकर प्रसन्न होते हैं क्योंकि वे उन लोगोंको अपने प्राणोंके समान प्रिय समझते हैं, यदि यही प्रियभाव सारे संसारके सुखियोंके प्रति अर्पित कर दिया जाय तो कितने आनन्दका कारण हो? दूसरेको सुखी देखकर जलन पैदा करनेवाली वृत्तिका नाश हो जाय!

(ख) दुखी प्राणियोंके प्रति दया करनेसे पर-अपकाररूप चित्त-मल नष्ट होता है। मनुष्य जैसे अपने कष्टोंको दूर करनेके लिये किसीसे भी पूछनेकी आवश्यकता नहीं समझता, भविष्यमें कष्ट होनेकी सम्भावना होते ही पहलेसे उसे निवारण करनेकी चेष्टा करने लगता है। यदि ऐसा ही भाव जगत्के सारे दुखी जीवोंके साथ हो जाय तो अनेक लोगोंके दुःख दूर हो सकते हैं। दुःखपीड़ित लोगोंके दुःख दूर करनेके लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर देनेकी प्रबल भावनासे मन सदा ही प्रफुल्लित रह सकता है।

(ग) धार्मिकोंको देखकर हर्षित होनेसे दोषारोप नामक मनका असूया मल नष्ट होता है, साथ ही धार्मिक पुरुषकी भाँति चित्तमें धार्मिक वृत्ति जागृत हो उठती है। असूयाके नाशसे चित्त शान्त होता है।

(घ) पापियोंके प्रति उपेक्षा करनेसे चित्तका क्रोधरूप मल नष्ट होता है। पापोंका चिन्तन न होनेसे उनके संस्कार अन्तःकरणपर नहीं पड़ते। किसीसे भी घृणा नहीं होती। इससे चित्त शान्त रहता है।

तामसिक मालूम पड़ें उनके लिये मनको धिक्कारना चाहिये। प्रतिदिन इस प्रकारके अभ्याससे मनपर सत्कार्य करनेके और असत्कार्य छोड़नेके संस्कार जमने लगेंगे, जिससे कुछ ही समयमें मन बुराइयोंसे बचकर भले भले कार्योंमें लग जायगा। मन पहले भले कार्यवाला होगा तब उसे वश करनेमें सुगमता होगी। कुसङ्गमें पड़ा हुआ बालक जबतक कुसङ्ग नहीं छोड़ता, तबतक उसे कुसङ्गियोंसे बुरी सलाह मिलती रहती है, इससे उसका वशमें होना कठिन रहता है पर जब कुसंग छूट जाता है तब उसे बुरी सलाह नहीं मिल सकती, दिनरात घरमें उसको माता पिताके सदुपदेश मिलते हैं, वह भली-भली बातें सुनता है। तब फिर उसके सुधरकर माता-पिताके आज्ञाकारी होनेमें विलम्ब नहीं होता। इसी तरह यदि विषय-चिन्तन करनेवाले मनको कोई एक साथ ही निर्विषय करना चाहे तो वह नहीं कर सकता। पहले मनको बुरे चिन्तनसे बचाना चाहिये, जब वह परमात्मा-सम्बन्धी शुभ चिन्ता करने लगेगा तब उसको वश करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

मनके कहनेमें न चलना

मनके कहनेमें नहीं चलना चाहिये। जबतक यह मन वशमें नहीं हो जाता तबतक इसे परम शत्रु मानना चाहिये। जैसे शत्रुके प्रत्येक कार्यपर निगरानी रखनी पड़ती है वैसे ही इसके भी प्रत्येक कार्यको सावधानीसे देखना चाहिये। जहां

कहीं यह उल्टा-सीधा करने लगे वहीं इसे पछाड़ना चाहिये। मनकी खातिर भूलकर भी न करनी चाहिये। यद्यपि यह बड़ा बलवान् है, कई वार इससे हारना होगा पर साहस न छोड़ना चाहिये। जो हिम्मत नहीं हारता वह एक दिन मनको अवश्य जीत लेता है। इससे लड़नेमें एक विचित्रता है, यदि दृढ़तासे लड़ा जाय तो लड़नेवालेका वल दिनों दिन बढ़ता है और इसका क्रमशः घटने लगता है, इसलिये इससे लड़नेवाला एक-न-एक दिन इसपर अवश्य ही विजयी होता है। अतएव इसकी हाँ में हाँ न मिलाकर प्रत्येक कार्यमें खूब सावधानीसे वरतना चाहिये। यह मन वड़ा ही चतुर है। कभी डरावेगा, कभी फुसलावेगा, कभी लालच देगा, वड़े वड़े अनोखे रंग दिखलावेगा; परन्तु कभी इसके धोखेमें न आना चाहिये। भूलकर भी इसका विश्वास न करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे इसकी हिम्मत टूट जायगी, लड़ने और धोखा देनेकी आदत छूट जायगी। अन्तमें यह आज्ञा देनेवाला न रहकर सीधा-सादा आज्ञा पालन करनेवाला वन जायगा।

मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चौर।
मनके मत चलिये नहीं, पलक पलक मन और ॥

मनको सत्कार्यमें संलग्न रखना

मन कभी निकम्मा नहीं रह सकता, कुछ न कुछ काम होना ही चाहिये। अतएव इससे निरन्तर काम लेना चाहिये। निकम्मा रहनेसे ही इसे बुरी बातें सूझा

करती हैं. अतएव जहाँतक नींद न आवे वहाँ तक चुने हुए सुन्दर मांगलिक कार्योंमें इसे लगाये रखना चाहिये।

मनको परमात्मामें लगाना

मनको वशमें करनेका उपाय प्रारम्भ करनेपर पहले पहले तो यह इतना ज़ोर दिखलाता है,-अपनी चंचलता और शक्तिमत्तासे ऐसी पछाड़ लगाता है, कि नया साधक घवड़ा उठता है, उसके हृदयमें निराशा-सी छा जाती है परन्तु ऐसी अवस्थामें धैर्य्य रखना चाहिये। मनका तो ऐसा स्वभाव ही है और हमें इसपर विजय पाना है तब घवड़ानेसे थोड़े ही काम चलेगा? मुस्तैदीसे सामना करना चाहिये। आज न हुआ तो क्या, कभी न कभी तो वशमें होगा ही। इसीलिये भगवान्ने कहा है:-

> शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया।
> आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥
>
> (गीता ६।२५)

'धीरे धीरे अभ्यास करता हुआ उपरामताको प्राप्त हो, धैर्ययुक्त बुद्धिसे मनको परमात्मामें स्थिर करके और किसी भी विचारको मनमें न आने दे।'

बड़ा धैर्य चाहिये। घवराने, उकताने या निराश होनेसे काम नहीं होगा। झाड़ूसे घर साफ कर लेनेपर भी जैसे धूल जमी हुई-सी दीख पड़ती है, उसी प्रकार मनको

संस्कारोंसे रहित करते समय यदि मन और भी अस्थिर या अपरिच्छिन्न दीखे तो क्या आश्चर्य है ? पर इससे डरकर झाड़ू लगाना बन्द न करना चाहिये। इस प्रकारकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि किसी प्रकारकी भी वृथा चिन्ता या मिथ्या संकल्पोंको मनमें नहीं आने दिया जायगा। बड़ी चेष्टा, बड़ी दृढ़ता रखनेपर भी मन साधककी चेष्टाओंको कई बार व्यर्थ कर देता है, साधक तो समझता है कि मैं ध्यान कर रहा हूं पर मनदेवता संकल्प-विकल्पोंकी पूजामें लग जाते हैं। जब साधक मनकी ओर देखता है तो उसे आश्चर्य होता है कि यह क्या हुआ ? इतने नये नये संकल्प, जिनकी भावना भी नहीं की गयी थी कहाँसे आ गये ? बात यह होती है कि साधक जब मनको निर्विषय करना चाहता है तब संसारके नित्य अभ्यस्त विषयोंसे मनको फुरसत मिल जाती है, उधर परमात्मामें लगनेका इससमय तक उसे पूरा अभ्यास नहीं होता। इसलिये फुरसत पाते ही वह उन पुराने दृश्योंको (जो संस्काररूपसे उस पर अङ्कित हो रहे हैं) बायस्कोपके फिल्मकी भांति क्षण क्षणमें एकके बाद एक उलटने लग जाता है। इसीसे उस समय ऐसे संकल्प मनमें उठते हुए मालूम होते हैं, जो संसारका काम करते समय याद भी नहीं आते थे। मनकी ऐसी प्रबलता देखकर साधक स्तम्भित-सा रह जाता है, पर कोई चिन्ता नहीं। जब अभ्यासका बल बढ़ेगा तब उसको संसारसे फुरसत मिलते ही तुरन्त परमात्मामें लग जायगा। अभ्यास दृढ़

होनेपर तो यह परमात्माके ध्यानसे हटाये जानेपर भी न हटेगा। मन चाहता है सुख। जबतक इसे वहाँ सुख नहीं मिलता, विषयोंमें सुख दीखता है तबतक यह विषयोंमें रमता है। जब अभ्याससे विषयोंमें दुःख और परमात्मामें परम सुख प्रतीत होने लगेगा तब यह स्वयं ही विषयोंको छोड़कर परमात्माकी ओर दौड़ेगा, परन्तु जब तक ऐसा न हो तबतक निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये। यह मालूम होते ही कि मन अन्यत्र भागा है, तत्काल इसे पकड़ना चाहिये। इसको पक्के चोरकी भाँति भागनेका बड़ा अभ्यास है इसलिये ज्यों ही यह भागे त्यों ही इसे पकड़ना चाहिये।

श्रीभगवान्‌ने कहा है:—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

(गीता ६। २६)

यह चञ्चल और अस्थिर मन जहाँ जहाँ दौड़कर जाय वहाँ वहाँसे हटाकर बारम्बार इसे परमात्मामें ही लगाना चाहिये।

जिस जिस कारणसे मन सांसारिक पदार्थोंमें विचरे उस उससे रोककर परमात्मामें स्थिर करे। मनपर ऐसा पहरा बैठा दे कि यह भाग ही न सके। यदि किसी प्रकार भी न माने तो फिर इसे भागनेकी पूरी स्वतन्त्रता दे दी जाय, परन्तु यह जहाँ जाय वहींपर परमात्माकी भावना की जाय, वहींपर इसे परमात्माके स्वरूपमें लगाया जाय। इस उपायसे भी मन स्थिर हो सकता है।

एक तत्त्वका अभ्यास करना

योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं:—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ।

(समाधिपाद ३२)

चित्तका विक्षेप दूर करनेके लिये पाँच तत्त्वोंमेंसे किसी एक तत्त्वका अभ्यास करना चाहिये। एक तत्त्वके अभ्यासका अर्थ ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक वस्तुकी या किसी मूर्त्तिविशेषकी तरफ एकदृष्टिसे देखते रहना, जबतक आँखोंकी पलक न पड़े या आँखोंमें जल न आ जाय तबतक उस एक ही चिह्नकी तरफ देखते रहना चाहिये, चिह्न धीरे धीरे छोटा करते रहना चाहिये। अन्तमें उस चिह्नको बिलकुल ही हटा देना चाहिये। 'दृष्टिः स्थिरा यत्र विनावलोकनम्' अवलोकन न करनेपर भी दृष्टि स्थिर रहे। ऐसा हो जानेपर चित्तविक्षेप नहीं रहता। इस प्रकार प्रतिदिन आध आध घण्टे भी अभ्यास किया जाय तो मनके स्थिर होनेमें अच्छी सफलता मिल सकती है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जो जितना अधिक समय दे सकेगा उसे उतना ही अधिक लाभ होगा।

ध्यान या मानस पूजा

सब जगह भगवान्‌के किसी नामको लिखा हुआ समझकर बारम्बार उस नामके ध्यानमें मन लगाना चाहिये

अथवा भगवान्‌के किसी स्वरूपविशेषकी अन्तरिक्षमें मनसे कल्पना कर उसकी पूजा करनी चाहिये। पहले भगवान्‌की मूर्तिके एक एक अवयवका अलग अलग ध्यान कर फिर दृढ़ताके साथ सारी मूर्तिका ध्यान करना चाहिये। उसीमें मनको अच्छी तरह स्थिर कर देना चाहिये। मूर्तिके ध्यानमें इतना तन्मय हो जाना चाहिये कि संसारका भान ही न रहे। फिर कल्पना-प्रसूत सामग्रियोंसे भगवान्‌की मानसिक पूजा करनी चाहिये। प्रेमपूर्वक की हुई नियमित भगवदुपासनासे मनको निश्चल करनेमें बड़ी सहायता मिल सकती है।

मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षाका व्यवहार

योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलिजी एक उपाय यह भी बतलाते हैं:—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।

(समाधिपाद ३३)

सुखी मनुष्योंसे प्रेम, दुःखियोंके प्रति दया, पुण्यात्माओंके प्रति प्रसन्नता और पापियोंके प्रति उदासीनताकी भावनासे चित्त प्रसन्न होता है।

(क) जगत्‌के सारे सुखी जीवोंके साथ प्रेम करनेसे चित्तका ईर्षामल दूर होता है, डाहकी आग बुझ जाती है। संसारमें लोग अपनेको और अपने आत्मीय-स्वजनोंको सुखी

देखकर प्रसन्न होते हैं क्योंकि वे उन लोगोंको अपने प्राणोंके समान प्रिय समझते हैं, यदि यही प्रियभाव सारे संसारके सुखियोंके प्रति अर्पित कर दिया जाय तो कितने आनन्दका कारण हो? दूसरेको सुखी देखकर जलन पैदा करनेवाली वृत्तिका नाश हो जाय!

(ख) दुखी प्राणियोंके प्रति दया करनेसे पर-अपकाररूप चित्त-मल नष्ट होता है। मनुष्य जैसे अपने कष्टोंको दूर करनेके लिये किसीसे भी पूछनेकी आवश्यकता नहीं समझता, भविष्यमें कष्ट होनेकी सम्भावना होते ही पहलेसे उसे निवारण करनेकी चेष्टा करने लगता है। यदि ऐसा ही भाव जगत्‌के सारे दुखी जीवोंके साथ हो जाय तो अनेक लोगोंके दुःख दूर हो सकते हैं। दुःखपीड़ित लोगोंके दुःख दूर करनेके लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देनेकी प्रबल भावनासे मन सदा ही प्रफुल्लित रह सकता है।

(ग) धार्मिकोंको देखकर हर्षित होनेसे दोषारोप नामक मनका असूया मल नष्ट होता है, साथ ही धार्मिक पुरुषकी भाँति चित्तमें धार्मिक वृत्ति जागृत हो उठती है। असूयाके नाशसे चित्त शान्त होता है।

(घ) पापियोंके प्रति उपेक्षा करनेसे चित्तका क्रोधरूप मल नष्ट होता है। पापोंका चिन्तन न होनेसे उनके संस्कार अन्तःकरणपर नहीं पड़ते। किसीसे भी घृणा नहीं होती। इससे चित्त शान्त रहता है।

इस प्रकार इन चारों भावोंके वारम्वार अनुशीलनसे चित्तकी राजस, तामस वृत्तियाँ नष्ट हो कर सात्त्विक वृत्तिका उदय होता है और उससे चित्त प्रसन्न होकर शीघ्र ही एकाग्रता लाभ कर सकता है।

सद्ग्रन्थोंका अध्ययन

भगवान्‌के परम रहस्य सम्बन्धी परमार्थ-ग्रन्थोंके पठन-पाठनसे भी चित्त स्थिर होता है। एकान्तमें बैठकर श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषदादि ग्रन्थोंका अर्थ सहित अनुशीलन करनेसे वृत्तियाँ तदाकार बन जाती हैं। इससे मन स्थिर हो जाता है।

प्राणायाम

समाधिसे भी मन रुकता है। समाधि अनेक तरहकी होती है। प्राणायाम समाधिके साधनोंका एक मुख्य अङ्ग है। योगदर्शनमें कहा गया हैः—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

(समाधिपाद ३४)

नासिकाके छेदोंसे अन्तरकी वायुको बाहर निकालना प्रच्छर्दन कहलाता है, और प्राणवायुकी गति रोक देनेको विधारण कहते हैं। इन दोनों उपायोंसे भी चित्त स्थिर होता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने भी कहा हैः —

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

(गीता ४ । २९)

कई अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, कई प्राणवायुमें अपानवायुको होमते हैं और कई प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणायाम किया करते हैं ।

इसी तरह महाभारत, श्रीमद्भागवत और उपनिषदोंमें भी प्राणायामका यथेष्ट वर्णन है । श्वास-प्रश्वासकी गतिको रोकनेका नाम ही प्राणायाम है । मनु महाराजने कहा है:—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणि दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहम् ॥

अग्निसे तपाये जाने पर जैसे धातुका मल जल जाता है उसी प्रकार प्राणवायुके निग्रहसे इन्द्रियोंके सारे दोष दग्ध हो जाते हैं ।

प्राणोंको रोकनेसे ही मन रुकता है । इनमें एक दूसरेका घनिष्ठ सम्बन्ध है, मन सवार है तो प्राण वाहन है । एकको रोकनेसे दोनों रुक जाते हैं । प्राणायामके सम्बन्धमें योगशास्त्रमें अनेक उपदेश मिलते हैं परन्तु वे बड़े ही कठिन हैं । योगसाधनमें अनेक नियमोंका पालन करना पड़ता है । योगाभ्यासके लिये बड़े ही कठोर आत्मसंयमकी आवश्यकता है । आजकलके समयमें तो कई कारणोंसे योगका साधन एक प्रकारसे असाध्य

ही समझना चाहिये। यहाँपर प्राणायामके सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जाता है कि बाँई नासिकासे बाहरकी वायुको अन्तरमें ले जाकर स्थिर रखनेको पूरक कहते हैं, दहिनी नासिकासे अन्तरकी वायुको बाहर निकालकर बाहर स्थिर रखनेको रेचक कहते हैं और जिसमें अन्तरकी वायु बाहर न जा सके और बाहरकी वायु अन्तरमें प्रवेश न कर सके इस भावसे प्राणवायु रोक रखनेको कुम्भक कहते हैं। इसीका नाम प्राणायाम है।

साधारणतः चार बार मन्त्र जप कर पूरक, सोलह बारके जपसे कुम्भक और आठ बारके जपसे रेचककी विधि है। परन्तु इस सम्बन्धमें उपयुक्त सद्गुरुकी आज्ञा विना कोई कार्य नहीं करना चाहिये। योगाभ्यासमें देखादेखी करनेसे उल्टा फल हो सकता है। 'देखा देखी साधे योग। छीजै काया बाढ़ै रोग।' पर यह स्मरण रहे कि प्राणायाम मनको रोकनेका एक बहुत ही उत्तम साधन है।

श्वासके द्वारा नामजप

मनको रोककर परमात्मामें लगानेका एक अत्यन्त सुलभ और आशङ्कारहित उपाय और है, जिसका अनुष्ठान सभी कर सकते हैं, वह है—आने जानेवाले श्वास-प्रश्वासकी गति पर ध्यान रखकर श्वासके द्वारा श्रीभगवान्‌के नामका जप करना। यह अभ्यास बैठते, उठते, चलते, फिरते, सोते, खाते

हर समय हरेक अवस्थामें किया जा सकता है। इसमें श्वास जोर जोरसे लेनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं। श्वासकी साधारण चालके साथ ही साथ नामका जप किया जा सकता है। इसमें लक्ष्य रखनेसे ही मन रुककर नामका जप हो सकता है। श्वासके द्वारा नामका जप करते समय चित्तमें इतनी प्रसन्नता होनी चाहिये कि मानो मन आनन्दसे उछला पड़ता हो। आनन्दरससे छका हुआ अन्तःकरण-रूपी पात्र मानो छलका पड़ता हो। यदि इतने आनन्दका अनुभव न हो तो बिना हुए ही आनन्द मानना चाहिये। इसीके साथ भगवान्‌को अपने अत्यन्त समीप जानकर उनके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। मानों उनके समीप होनेका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। इस भावसे संसारकी सुधि भुलाकर मनको परमात्मामें लगाना चाहिये।

ईश्वर-शरणागति

ईश्वर-प्रणिधानसे भी मन वशमें होता है, अनन्य भक्तिसे परमात्माके शरण होना ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है। ईश्वर शब्दसे यहाँ पर परमात्मा और उनके भक्त दोनों ही समझे जा सकते हैं। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' 'तन्मयाः' 'यतस्तदीयाः' इन श्रुति और भक्तिशास्त्रके सिद्धान्त-वचनोंसे भगवान्, ज्ञानी और भक्तोंकी एकता सिद्ध होती है। श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके प्रभाव और चरित्रके चिन्तनमात्रसे चित्त आनन्दसे भर

जाता है। संसारका वन्धन मानों आपसे आप टूटने लगता है। अतएव भक्तोंका सङ्ग करने, उनके उपदेशोंके अनुसार चलने और भक्तोंकी कृपाको ही भगवत्प्राप्तिका प्रधान उपाय समझनेसे भी मन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। भगवान् और सच्चे भक्तोंकी कृपासे सब कुछ हो सकता है।

मनके कार्योंको देखना

मनको वशमें करनेका एक बड़ा उत्तम साधन है 'मनसे अलग होकर निरन्तर मनके कार्योंको देखते रहना।' जब तक हम मनके साथ मिले हुए हैं तभी तक मनमें इतनी चञ्चलता है। जिस समय हम मनके द्रष्टा बन जाते हैं उसी समय मनकी चञ्चलता मिट जाती है। वास्तवमें तो मनसे हम सर्वथा भिन्न ही हैं। किस समय मनमें क्या सङ्कल्प होता है उसका पूरा पता हमें रहता है। बम्बईमें बैठे हुए एक मनुष्यके मनमें कलकत्तेके किसी दृश्यका संकल्प होता है इस बातको वह अच्छी तरह जानता है। यह निर्विवाद बात है जानने या देखनेवाला जाननेकी वा दीखनेकी वस्तुसे सदा अलग होता है। आँखको आँख नहीं देख सकती, इस न्यायसे मनकी बातोंको जो जानता या देखता है वह मनसे सर्वथा भिन्न है। भिन्न होते हुए भी वह अपनेको मनके साथ मिला लेता है इसीसे उसका ज़ोर पाकर मनकी उद्दण्डता बढ़ जाती है। यदि साधक अपनेको निरन्तर अलग रखकर मनकी क्रियाओंका द्रष्टा बनकर देखनेका अभ्यास करे तो मन बहुतही शीघ्र सङ्कल्परहित हो सकता है

भगवन्नाम-कीर्तन

मग्न होकर उच्च स्वरसे परमात्माका नाम और गुण-कीर्त्तन करनेसे भी मन परमात्मामें स्थिर हो सकता है। भगवान् चैतन्यदेवने तो मनको निरुद्ध कर परमात्मामें लगानेका यही परम साधन बतलाया है। भक्त जब अपने प्रभुका नाम-कीर्त्तन करते करते गद्गद्कण्ठ, रोमाञ्चित और अश्रुपूर्ण लोचन होकर प्रेमावेशमें अपने आपको सर्वथा भुलाकर केवल प्रेमिक परमात्माके रूपमें तन्मयता प्राप्त कर लेता है तब भला मनको जीतनेमें और कौन-सी बात बच रहती है? अतएव प्रेमपूर्वक परमात्माका नाम-कीर्त्तन करना मनपर विजय पानेका एक अत्युत्तम साधन है।

इस प्रकारसे मनको रोककर परमात्मामें लगानेके अनेक साधन और युक्तियाँ हैं। इनमेंसे या अन्य किसी भी युक्तिसे किसी प्रकारसे भी मनको विषयोंसे हटाकर परमात्मामें लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये। मनके स्थिर किये बिना अन्य कोई भी अवलम्बन नहीं। जैसे चञ्चल जलमें रूप विकृत दीख पड़ता है उसी प्रकार चञ्चल चित्तमें आत्माका यथार्थ स्वरूप प्रतिबिम्बित नहीं होता। परन्तु जैसे स्थिर जलमें प्रतिबिम्ब जैसा होता है वैसा ही दीखता है इसी प्रकार केवल स्थिर मनसे ही आत्माका यथार्थ स्वरूप स्पष्ट प्रत्यक्ष होता है। अतएव प्राणपणसे मनको स्थिर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

अबतक जो इस मनको स्थिर कर सके हैं वे ही उस श्यामसुन्दर-के नित्यप्रसन्न, नवीन-नील-नीरद प्रफुल्ल मुखारविन्दका दर्शन कर अपना जन्म और जीवन सफल कर सके हैं। जिसने एक बार भी उस 'अनूप रूप शिरोमणिका' दर्शन कर लिया है वह धन्य हो गया है, उसके लिये उस सुखके सामने और सारे सुख फीके पड़ गये हैं, उस लाभके सामने और सारे लाभ नीचे हो गये हैं।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

जिस लाभको पाने पर उससे अधिक और कोईसा लाभ भी नहीं जँचता।

अतएव अपनी अपनी योग्यताके अनुसार तुरन्त साधनमें लग जाना चाहिये। भगवान्में और उनकी आश्वास-वाणीमें दृढ़ विश्वास रखकर लक्ष्य-प्राप्तिके लिये तेजीके साथ अग्रसर होना चाहिये!

पतितका प्रलाप

पतित नहीं जो होते जगमें कौन 'पतितपावन' कहता ?
अधमोंके अस्तित्व विना 'अधमोद्धारण' कैसे कहता ?
होते नहीं पातकी 'पातकि-तारण' तुमको कहता कौन ?
दीन हुए विन दीनदयालो ! 'दीनबन्धु' फिर कहता कौन ?
पतित, अधम, पापी, दीनोंको क्योंकर तुम विसार सकते ?
जिनसे नाम कमाया तुमने, कैसे उन्हें टार सकते ?
चारों गुण मुझमें पूरे, मैं तो विशेष अधिकारी हूँ !
नाम बचानेका साधन हूँ यों भी तो उपकारी हूँ !!
इतने पर भी नाथ ! तुम्हें यदि मेरा स्मरण नहीं होगा !
दोष क्षमा हो, इन नामोंका रक्षण फिर क्योंकर होगा ?
सुन प्रलापयुत पुकार अब तो करिये सत्वर मम उद्धार !
नहीं छोड़िये नामोंको, यों कहनेको होता लाचार !!
जिसके कोई नहीं तुम्हीं उसके रक्षक कहलाते हो !
मुझे, नाथ ! अपनानेमें फिर क्यों इतना सकुचाते हो ?!
नाम तुम्हारे चिर-सार्थक हैं मुझको दृढ़ विश्वास यही !
इसी हेतु पावन कीजे, प्रभु ! मुझे कहींसे आश नहीं !!
चरणोंको दृढ़ पकड़े हूँ अब नहीं छूटूँगा किसी तरह !
भले फेंकदो, नहीं सुहाता, अगर पड़ा भी इसी तरह !!
पर यह रखना स्मरण नाथ जो यों दुत्कारोगे हमको !
'अशरण-शरण' 'अनाथ-नाथ' प्रभु ! कौन कहेगा फिर तुमको ?